तृतीय अध्याय

प्रेमचंद के उपन्यास : प्रमुख पुरुष पात्रों में मानव–मूल्य

उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को प्रेरित–प्रभावित करें। प्रेमचन्द ने अपने कथा–साहित्य में अनेक प्रकार के मानव–चरित्रों के चित्रों का निर्माण किया है।

प्रेमचंद के शब्दों में– *''मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र–मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।''*[1] प्रेमचन्द के पात्रों में उत्कृष्ट मानवीय–मूल्यों का प्रकाश है– सत्य, न्याय, अहिंसा, दया, करूणा, सहानुभूति, सेवा, त्याग, क्षमा, देशभक्ति, मानव–प्रेम, ईमानदारी, आस्था, सदाचरण, शील, संतोष, संवेदना, स्वाभिमान, विश्वबन्धुत्व, परोपकार इत्यादि।

प्रेमचंद ने कहा है कि, *''मैं अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करता हूँ जैसे– 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर, 'रंगभूमि' में सूरदास, 'गोदान' में होरी, 'कायाकल्प' में चक्रधर, 'कर्मभूमि' में अमरकान्त, 'गबन' में जालपा इत्यादि। ''प्रेमचंद पहले लेखक थे जिन्होंने जन साधारण की शूरता, धीरता, त्याग और बलिदान के सद्गुणों का चित्रण करके हिन्दी साहित्य को वास्तविक जीवन के 'हीरो' दिए।''*[2]

''मेरे अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से लिए गये हैं। जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व नहीं होता, तब वह छाया मात्र, अनिश्चित और अविश्वसनीय हो उठता है।''[3]

प्रेमचंद ने भारतीय समाज को समग्रता में चित्रित करने का प्रयास सबसे अधिक सजग होकर किया है। इसमें शोषक हैं तो शोषित भी, पण्डे–पुरोहित हैं तो असंख्य धार्मिक भावुकता के ग्रास भी बने हैं। ज़मींदार से लेकर रैयत तक, प्रेमचंद

गहरी मनोवैज्ञानिक सूझ–बूझ के साथ भारतीय समाज को अभिव्यक्ति देते हैं तो पुरुष–पात्रों के साथ स्त्री–पात्रों का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध अनिवार्यतः चित्रित होता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में अधिसंख्य ऐसे पुरुष पात्र हैं, जिनका जीवन किसी –न–किसी रूप में शोषित या कारुणिक है, वे दया के पात्र हैं। समाज के ऐसे जन–जीवन से प्रेमचंद विशेष सहानुभूति रखते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में उन परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण किया है, जो व्यक्ति को निम्न ही नहीं, बल्कि नारकीय जीवन भोगने के लिए विवश करते हैं।

'सूरदास', 'होरी' व 'मनोहर' का व्यक्तित्व–शील–गुण न सिर्फ प्रेमचंद के कथा–साहित्य में वरन् सम्पूर्ण हिन्दी कथा–साहित्य में प्रतिनिधि पुरुष–पात्र के रूप में सजीव बन पड़ा है। रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेमचंद के पात्रों के बारे में शायद सबसे पहले लिखा– ''पात्रों में ऐसे स्वाभाविक ढाँचे की ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएँ मिलने लगीं, जिन्हें सामने पाकर अधिकांश लोगों को ये भासित हो कि कुछ इसी ढंग की विशेषता वाले व्यक्ति हमने कहीं न कहीं देखे हैं। ..... प्रेमचंद की–सी चलती और पात्रों के अनुरूप रंग बदलने वाली भाषा भी पहले नहीं देखी गयी थी।''[4]

रंगभूमि

'रंगभूमि' प्रेमचंद का बहुचर्चित उपन्यास है। प्रेमचंद ने स्वयं भी इसे अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना माना है तथा इसे सामाजिक की अपेक्षा मुख्यतः राजनीतिक उपन्यास कहा है। हमें इसमें सामाजिक और राजनीतिक तत्त्वों का समन्वय मिलता है और उभरते हुए पूँजीवाद के सामने पुरानी मान्यताओं को टूटते हुए दिखाया गया है। "'रंगभूमि' भारतीय जन–जीवन का रंगमंच है। वर्तमान युग–जीवन के सभी प्रतिनिधि पात्र इस मंच पर सच्चा अभिनय करते हैं। यह कृति प्रेमचंद की विराट् उद्‌भावना है। इसमें कलाकार ने मुख्यतः औद्योगिक समस्या के दुर्गुणों की ओर एक सच्चे आदर्शवादी की तरह दृष्टिपात किया है। 'रंगभूमि' में एक साथ औद्योगिक और कृषि–जीवन की तुलना, पूँजी–केन्द्रीकरण का विरोध, औद्योगिक सभ्यता का विरोध,

व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा, धार्मिक रूढ़िवादिता का विरोध, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए आन्दोलन का समर्थन, देशी राज्यों की राजनीति, अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नकली और थोथी आदर्शवादिता, यह सब कुछ मूर्त हो उठा है। इस जीवन के मंच पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पादरी, राजा, कुँवर, दीवान, ज़मींदार, किसान, मिल–मालिक, मजदूर, पण्डे और गुण्डे, देशसेवी, आत्मसेवी और आत्मदर्शी सभी ने अपना–अपना अभिनय किया है। आलोचकों की दृष्टि में प्रेमचंद जी ने इस उपन्यास में पहली बार चरित्र–प्रधान उपन्यास लिखने में सफलता प्राप्त की है। 'सूरदास' का चरित्र प्रेमचंद की अनुपम सृष्टि है। 'सूरदास' को गाँधी का ही दूसरा रूप मानते हैं।''[5]

सूरदास

सूरदास का स्थानीय परिचय प्रेमचंद ने कुछ इस प्रकार दिया है– ''इन्हीं में (पाँड़ेपुर की बस्ती) एक गरीब और अंधा चमार रहता है, जिसे लोग सूरदास कहते हैं। भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना–बनाया नाम है, और भीख माँगना बना–बनाया काम है। उनके गुण और स्वभाव भी जगत्–प्रसिद्ध हैं, गाने–बजाने में विशेष रुचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, उनके स्वाभाविक लक्षण हैं। बाह्य दृष्टि बंद और अंतर्दृष्टि खुली हुई।''[6] 'सूरदास' की रूपाकृति का परिचय देते हुए प्रेमचंद ने दिखाया है– ''सूरदास एक बहुत ही क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति था। उसे दैव ने कदाचित् भीख माँगने ही के लिए बनाया था। वह नित्यप्रति लाठी टेकता हुआ पक्की सड़क पर बैठता और राहगीरों की खैर मनाता। 'दाता! भगवान तुम्हारा कल्यान करें'– यही उसकी टेक थी, और इसी को वह बार–बार दुहराता था। कदाचित् वह इसे लोगों की दया–प्रेरणा का मंत्र समझता था।''[7]

हिन्दी साहित्य के नायकों का चारित्र्य विकास देखते हुए सहसा हाथों में लकड़ी थामे एक अंधे भिखारी का यह अप्रत्याशित प्रवेश ही अपने आप में एक बहुत ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। प्रेमचंद की दृष्टि ने साधारण मनुष्यों की

भीड़भाड़ से, अपने उपन्यास 'रंगभूमि' का प्रमुख नायक बनने के लिए, जिस व्यक्ति का चुनाव किया– वह चुनाव ही हिन्दी पाठकों की सहज कल्पना के लिए एकदम से आकस्मिक और अचिन्तनीय था। उपन्यास का सम्पूर्ण कथा–सूत्र उसी के चारों ओर घूमता है। अतः 'सूरदास' 'रंगभूमि' की विभिन्न घटनाओं की धुरी है। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सूरदास दलित पात्र है, किन्तु चारित्रिक दृष्टि से वह महान है।

भिखारी 'सूरदास' के सामने से जैसे ही कोई फिटन गुजरती थी, वह उसके पीछे 'दाता! भगवान तुम्हारा कल्यान करे' कहता हुआ दौड़ता था। जॉन सेवक की फिटन के पीछे टेक को दोहराता हुआ वह तीव्रगति से पूरे एक मील तक दौड़ा चला आया। 'सूरदास' के दौड़ने के दृश्य को प्रेमचंद अपनी लेखनी के माध्यम से चलचित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं– ''सूरदास फिटन के पीछे दौड़ता चला जाता था। इतनी दूर तक और इतने वेग से कोई मँजा हुआ खिलाड़ी भी न दौड़ सकता था।''[8] 'रंगभूमि' के 'सूरदास' की यह लम्बी दौड़ सहज ही परिचय दे जाती है– उसकी शक्ति का, उसके विश्वास का, उसके धैर्य का और अपने पेशे के प्रति उसकी ईमानदारी व निष्ठा का। जब जॉन सेवक को पता चला कि ज़मीन 'सूरदास' की है तो वे गाड़ी से उतरकर सूरदास के पास आये और नम्र भाव से बोले– ''क्यों सूरदास, यह ज़मीन तुम्हारी है? सूरदास– हाँ हुजूर मेरी ही है। बाप दादों की इतनी ही निशानी बच रही है।''[9] जॉन सेवक जब ज़मीन के बदले मुँह माँगी कीमत देने की बात करता है तो सूरदास कहता है– ''सरकार पुरखों की यही निसानी है, बेचकर उन्हें कौन मुँह दिखाऊँगा? साहब इस ज़मीन से मुहल्ले वालों का बड़ा उपकार होता है। आस–पास के सब ढोर यहीं चरने आते हैं।'' जॉन सेवक– ''सोफिया सत्य कहती थी कि तुम त्याग की मूर्ति हो। मैंने बड़ों–बड़ों में इतना त्याग नहीं देखा।''[10]

व्यापारी जॉन सेवक ने 'सूरदास' को भिक्षा के रूप में पाँच रुपये का लोभ देकर बरगलाना चाहा। पर दाता की कल्यान–कामना करते हुए जो भिखारी अपना

हाथ फैलाते हुए एक मील भर तक फिटन के साथ दौड़ा चला आया था, उसने पाँच रुपये का नाम सुनते ही हाथ खींच लिया। बोला– ''हुजूर, मैं रुपये लेकर क्या करूँगा? धर्म के नाम पर दो–चार पैसे दे दीजिए, तो आपका कल्यान मनाऊँगा। और किसी नाते से मैं रुपये न लूंगा।''[11] मनुष्य को वश में करने के लिए अर्थ का महामंत्र काफी सिद्धि पा चुका है– पा रहा है। इसलिए जॉन सेवक ने कृत्रिमता पूर्वक प्रतिवाद किया– ''तुम्हें दो–चार पैसे क्या दूँ? इसे ले लो, धर्मार्थ ही समझो।'' सूरदास– ''नहीं साहब, धर्म में आपका स्वार्थ मिल गया है, अब धर्म नहीं रहा। जॉन सेवक ने बहुत आग्रह किया, किन्तु सूरदास ने रुपये नहीं लिए।''[12] *''यहाँ तक आते–आते 'रंगभूमि' का 'सूरदास' समाज से बहिष्कृत, निर्धन, अपाहिज, विवश, भिखारियों की पंक्ति से ही हटकर खड़ा नहीं होता, बल्कि उसकी मनुष्यता अपने आप में इतनी धनी है कि बड़े से बड़े सम्मानित, प्रतिष्ठित पूँजीपतियों की तुलना में भी वह बहुत ऊँचाई पर ठहरती है। केवल दो टाँगों के बल पर ही चलने, फिरने और दौड़ने का यथामान्य प्रमाण देकर ही उसकी मानवीय देह, पशुओं से भिन्न होने का दावा नहीं करती, बल्कि वह अपने आंतरिक व्यवहार के द्वारा ही मनुष्य कहलाने के अधिकार को पूर्णता दे रही है। वह बाहर से भी मनुष्य है और भीतर से भी!''*[13]

'रंगभूमि' की मुख्य कथा अंधे भिखारी 'सूरदास' को लेकर रची गई है। जो पूर्वजों से विरासत में मिली ज़मीन के लिए मरते दम तक लड़ता है। एक उदीयमान ईसाई पूँजीपति (जॉन सेवक) इस भूमि को खरीदकर उसमें सिगरेट का कारखाना लगाना चाहता है। जॉन सेवक का गुमाश्ता ताहिर अली, 'सूरदास' के जिद से क्रोधित होकर कहता है– ''साहब यह ज़मीन लेंगे जरूर चाहे खुशी से दो या रोकर। सूरदास ने गर्व से उत्तर दिया– खाँ साहब, अगर ज़मीन जाएगी तो इसके साथ मेरी जान भी जाएगी।''[14] जब नायकराम व बजरंगी धन की लालच में आकर सूरदास का साथ छोड़ देते हैं तब 'सूरदास' कहता है– ''अब न्याय के बल पर लडूंगा, भगवान् ही का भरोसा करूंगा।..... जिधर न्याय है, उधर किसी की मदद की इतनी जरूरत भी नहीं है। मेरी चीज है, बाप–दादों की कमाई है, किसी दूसरे का

उस पर अख्तियार नहीं है। अगर ज़मीन गयी, तो उसके साथ मेरी जान भी जाएगी।''[15] 'सूरदास' अपनी ज़मीन को पुरखों की यादगार समझता है, वह मरने से पहले वहाँ अपनी यादगार में कुछ बनाकर छोड़ जाना चाहता है।

'रंगभूमि' का प्रमुख पात्र 'सूरदास' प्रेमचंद के आदर्शों का प्रतिरूप है। 'सूरदास' की उस अस्थिपिंजर देह में स्पन्दित हृदय प्रेमचंद का है। वास्तविक आधार पर प्रेमचंद की चेतना और संस्कार के द्वन्द से उसका निर्माण हुआ है। 'सूरदास' की सुरीली तान आकाश–मण्डल में यों नृत्य करती हुई मालूम होती थी, जैसे प्रकाश–ज्योति जल के अन्तस्थल में नृत्य करती है– *''झीनी–झीनी बीनी चदरिया/काहै कै ताना, काहै कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया?..... भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?/वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना, क्यों निज मरजादा छोड़ै?/भइ, क्यों रन से मुंह मोड़ै? क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिन्ता, क्यों दुःख से नाता जोड़ै?/भई..... । तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,/क्यों धरम–नीति को तोड़ै?।भई क्यों.....''*[16]

'सूरदास' के इस पद में जीवन का सम्पूर्ण रहस्य कूट–कूटकर भरा हुआ मालूम होता था।

मातृहीन, पितृहीन अपने भाई के लड़के 'मिट्ठू' का जिस मानवोचित जिम्मेदारी के साथ 'सूरदास' ने पालन–पोषण किया– वह सर्वथा उसी के योग्य था। वह अपने प्राणों से भी बढ़कर 'मिट्ठू' को प्यार करता था। 'सूरदास' परिवार के साथ–साथ समाज का भी भला चाहता है। आज के समाज में सर्वत्र व्यभिचार और बलात्कार का घना काला बादल छाया हुआ है। 'सूरदास', उस काले बादल के आगमन से पूर्व लोगों को आगाह करता है। वह कहता है– सिगरेट का कारखाना लगने से गाँव उजड़ जाएगा और व्यभिचार फैलेगा। आज के समाज में एक नारी के लिए 'पुरुष' तो पग–पग पर मिल जाता है– पर उसे मनुष्य विरला ही मिलता है। जब भैरो अपनी पत्नी 'सुभागी' को पीटकर घर से निकाल देता है तो गाँव में

कोई उसे शरण नहीं देता है, तब 'सूरदास' उसे अपनी झोपड़ी में शरण देता है और उसे अपनी बहन मानता है, यद्यपि भैरो व गाँव वाले उस पर लांछन लगाते हैं। 'सूरदास' की नेत्रहीन दृष्टि में औरत की आबरू कोई हँसी–खेल नहीं थी।

जॉन सेवक व्यवसायी है– वे किसी भी तरीके से 'सूरदास' की ज़मीन को हथिया लेना चाहता है और सरकार के नुमाइन्दों से साँठ–गाँठ करके आखिर वह उस ज़मीन को अपने कब्जे में कर ही लेता है। 'सूरदास' की ज़मीन पर सिगरेट का कारखाना बन गया। उससे उसकी पैतृक ज़मीन छिन गयी– अब उसके बाद कारखाने में मजदूरों को मकान चाहिए। इस समस्या के समाधान में गाँव के सभी निवासियों को अपने–अपने मकान खाली करने होंगे। उन्हें मकानों का मुआवजा मिलेगा– *''सूरदास की झोपड़ी का मुआवजा 1 रु. रक्खा गया था।''*[17] 'सूरदास' और जॉन सेवक के बीच ज़मीन का यह संघर्ष– अन्त में भयंकर आन्दोलन का रूप ले लेता है। गोलियों तक की नौबत आ जाती है। जिससे इन्द्रदत्त, विनय और गाँव के कई जवान शहीद हो जाते हैं। सूरदास कहता है– *''जो गरीबों के लिए जान लड़ा दे वही सच्चा वीर है। इस संघर्ष में किसी से मत डरो।''*[18] प्रेमचंद, 'सूरदास' से यही तो कहलवाते हैं– *''मैं हाकिमों को दिखा देता कि एक दीन अंधा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है,तोप का मुंह कैसे बंद कर देता है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धरम के बल से लड़ना चाहता था।''*[19] यहाँ पर 'सूरदास' का शौर्य, साहस व विचार अपनी पराकाष्ठा पर व्यंजित हुआ है। 'सूरदास' के व्यक्तित्व–शील–गुण से उसके दोस्त–दुश्मन, पास–पड़ोस के सभी लोग प्रभावित व प्रेरित होते हैं। जॉन सेवक– *''मालूम होता है बड़े जीवट का आदमी है।*[20] ताहिर– *"हुजूर, 'मुझे तो कामिल यकीन हो गया कि कोई फरिश्ता है।'.....*

मि. क्लार्क– *'यह अंधा जरूर कोई असाधारण पुरुष है।*[21]

सोफिया– *''वह गरीब है, भिखारी है, पर लोभी नहीं। मुझे तो कोई साधु, ज्ञानी पुरुष, पूरा फिलासफर मालूम होता है।''*[22]

इन्द्रदत्त– *''मुझे तो वह निष्कपट, सच्चा, सरल, मनुष्य मालूम होता है।*

इन्दु– *वह अपनी धुन का पक्का, निर्भीक, निस्पृह, सत्यनिष्ठ आदमी है, किसी से दबना नहीं जानता।''*[23]

महेन्द्र– *''मानना पड़ेगा कि उसे मानव–चरित्र का पूरा ज्ञान है। निरक्षर होकर भी आज उसने कितने ही शिक्षित और विचारशील आदमियों को अपना भक्त बना लिया।''*[24]

'रंगभूमि' में 'सूरदास' के चरित्र के बारे में निम्न अंश उद्धृत है– *''भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भर पेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला, पर हृदय धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भण्डार था, देह पर मांस न था पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।''*[25]

जब्र और फ़रेब से उसकी जमीन छीन ली जाती है और उसकी झोपड़ी जला दी जाती है। 'सूरदास' प्रेमचंद के उन पात्रों में है जो जिन्दगी को एक संघर्ष समझते हैं और कितनी भी कठिनाइयाँ पड़े, उनके सामने पीठ दिखाना नहीं जानते। 'सूरदास' का चरित्र 'मिठुआ' से उसकी बातचीत में बहुत अच्छी तरह झलकता है–

''मिठुआ– दादा, अब हम रहेंगे कहाँ?

सूरदास– दूसरा घर बनाएँगे।

मिठुआ– और जो कोई फिर आग लगा दे?

सूरदास– तो फिर बनाएँगे।

मिठुआ– और जो कोई हज़ार बार लगा दे?

सूरदास– तो हम हज़ार बार बनाएँगे।

मिठुआ– और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?

सूरदास– तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे।''[26]

''उसके जवाब में चरित्र की दृढ़ता छिपी है। सूरदास हिन्दुस्तान के उन किसानों में है जिनमें रचने की, निर्माण करने की तीव्र आकांक्षा है। उनकी बनाई हुई चीजों को लाख बार बरबाद कर दो, नए निर्माण के लिए वे फिर कमर कसकर तैयार हो जाते हैं।''[27]

अंग्रेजी राज का प्रतिनिधि क्लार्क राजा महेन्द्र सिंह से कहता है– ''हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं है, भय ऐसे मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं।''[28] क्लार्क 'सूरदास' से डरता है, इसलिए कि सूर अन्याय नहीं सह सकता और जनता उसका आदर करती है।

सूरदास मृत्यु–शय्या पर पड़ा हुआ कहता है– *''हमारा दम उखड़ जाता है हाँफने लगते हैं, खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं, गाली–गलौज, मारपीट करते हैं। कोई किसी को नहीं मानता। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस इतना ही फ़रक है।''*[29]

'सूरदास' की जीत क्यों नहीं हुई? इसलिए कि खिलाड़ी आपस में मिलकर न खेले थे, आपस में झगड़ते रहते थे। क्या उसकी बात सच है? किसान आपस में झगड़ते रहते थे, मजदूरों में न आपसी एका था, न उन्होंने किसानों से एका किया था। फिर क्लार्क और जॉन सेवक की जीत क्यों न होती? इसके अलावा 'सूरदास' के शत्रु ज्यादा निपुण हैं। वह कहता है– फिर जीतना है तो सावधान होकर इनसे खेलना। 'सूरदास' मानो अपनी मृत्यु–शय्या से संदेश देता है– *''अगर अपने उजड़े हुए घर बसाने हैं तो अपना एका मजबूत करो।''*[30] क्योंकि एकता में ही शक्ति है।

'सूरदास' को गर्व है कि वह कायरों की तरह मैदान छोड़कर नहीं भागा; उसे दृढ़ विश्वास है कि वह जीतेगा यानी न्याय का पक्ष जीतेगा, भले ही 'सूरदास' व्यक्तिगत रूप से दुनिया में न रहे। वह कहता है– *''हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार–हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी।''*[31]

'रंगभूमि' उपन्यास सन् 1930 का आन्दोलन छिड़ने के पहले लिखा गया था प्रेमचंद ने मानो भविष्य की ओर देखते हुए हिन्दुस्तान की जनता की तरफ से अंग्रेजी राज को चुनौती देते हुए 'सूरदास' से कहलाया था– *''फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो।''* प्रेमचंद ने 'सूरदास' का सबसे बड़ा गुण बताया है– *''अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था; अनीति उसके लिए असह्य थी।''*[32] वह जिस बात को सत्य मान लेता है, गाँव वालों के विरोध और परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के बावजूद उसके लिए लड़ता है और अन्त में इसी सत्य की रक्षा में प्राण त्याग देता है।

जॉन सेवक की औद्योगिक क्रान्ति से नुकसान होता है केवल किसानों का। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में बड़ी खूबी से दिखलाया है कि ऐसे पूँजीपति, जिनकी साँठ–गाँठ ज़मींदारों और राजाओं से होती है, अंग्रेजी राज के परम भक्त और सहायक होते हैं। 'सूरदास' इन सबकी ताकत को चुनौती देता है। उसकी लड़ाई वस्तुतः सामंत–विरोधी और साम्राज्य–विरोधी है।

जब सोफिया राजा साहब को और बदनाम करने को कहती है, तब 'सूरदास' कहता है– ''नहीं मिस साहब, यह खिलाड़ियों की नीति नहीं है। खिलाड़ी जीतकर हारने वाले खिलाड़ी का हँसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है और हाथ जोड़कर कहता है– भैया! अगर, हमने खेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो, या कोई अनुचित व्यवहार किया हो, तो हमें माफ करना।''[33]

'सूरदास' अपने विरोधियों का भी भला चाहता है। जनता जब कारखाने की तरफ बढ़ती है तो वह उन्हें रोकता है। 'मिठुआ' जब गोदाम में आग लगाने की बात कहता है तो सूरदास जॉन सेवक को आगाह कर देता है– उस (मिठुआ) पर कड़ी निगाह रखिएगा। अगर अवसर पा गया तो चूकने वाला नहीं है। जॉन सेवक कहता है– ''मेरे हाथों तुम्हारा बड़ा अहित हुआ। इसके लिए मुझे क्षमा करना। सूरदास– मेरा तो आपने कोई अहित नहीं किया, मुझसे और आप से दुसमनी ही कौन–सी

थी? हम और आप आमने–सामने की पालियों में खेले। आपने भरसक जोर लगाया, मैंने भी भरसक जोर लगाया। जिसको जीतना था, जीता, जिसको हारना था हारा। खिलाड़ियों में बैर नहीं होता।..... सेवक– सूरदास, तुम इस संग्राम में निपुण हो, मैं तुम्हारे आगे निरा बालक हूँ। लोकमत के अनुसार मैं जीता और तुम हारे, पर मैं जीतकर भी दुखी हूँ, तुम हारकर भी सुखी हो। तुम्हारे नाम की पूजा हो रही है, मेरी प्रतिमा बनाकर लोग जला रहे हैं।..... (सोफिया से अंग्रेजी में) बड़ा सत्यप्रिय आदमी है।''[34]

भैरो, सूरदास की झोपड़ी दो बार जलाता है, उसकी पैसे की पोटली चुरा लेता है। फिर भी 'सूरदास' चन्दे के शेष बचे पैसे भैरो को उसकी दूकान बनाने के लिए देता है। 'सूरदास' भैरो से कहता है– ''हमारी बड़ी भूल यही है कि खेल को खेल की तरह नहीं खेलते। खेल में धांधली करके कोई जीत ही जाए, तो क्या हाथ आएगा? खेलना तो इस तरह चाहिए कि निगाह जीत पर रहे, पर हार से घबराए नहीं, ईमान को न छोड़े। जीतकर इतना न इतराए कि अब कभी हार होगी ही नहीं। यह हार–जीत तो जिंदगानी के साथ है। हाँ, एक सलाह की बात कहता हूँ। तुम ताड़ी की दूकान छोड़कर कोई दूसरा रोजगार क्यों नहीं करते?'[35]

'रंगभूमि' में 'सूरदास की झोपड़ी' रंगमंच के रूप में उपस्थित है। प्रेमचंद लिखते हैं– ''सूरदास झोपड़े के सामने लाठी लिये खड़ा था, मानो सूत्रधार नाटक का आरंभ करने को खड़ा है।''[36] विनय कहता है– ''तुम्हारी झोपड़ी नहीं, यह हमारा जातीय मंदिर है। इस पर फावड़े चलते देखकर शांत नहीं बैठे रह सकते।''[37] 'सूरदास' राजा साहब से कहता है– ''हाँ कोई धरम का काम होता, तो सबसे पहले मैं अपना झोपड़ा दे देता।..... सरकार का धरम परजा को पालना है कि उसका घर उजाड़ना, उसको बरबाद करना।..... बोला– झोपड़ा क्यों गिरवाइएगा? इससे तो यही अच्छा कि मुझे ही गोली मरवा दीजिए।''[38] 'इस व्यूह के मध्य में, झोपड़े के द्वार पर सूरदास सिर झुकाए बैठा हुआ था, मानों धैर्य, आत्मबल और शान्त तेज की सजीव मूर्ति हो।''[39] ''तीन तोपें झोपड़े की ओर मुंह किये हुए खड़ी थीं, मानों रंगभूमि

में दैत्यों ने प्रवेश किया हो।''[40] संघर्ष में क्लार्क 'सूरदास' पर गोली चलाता है। गोली 'सूरदास' के कंधे में लगती है और वह भूमि पर गिर पड़ता है। डॉक्टर ने कहा– ''इसकी सहन–शक्ति अद्‌भुत है। इसके कन्धे में दो इंच गहरा और दो इंच चौड़ा नश्तर दिया गया, पर इसने क्लारोफार्म न लिया।''[41] अन्ततः 'सूरदास' कहता है– ''माता–पिता, भाई–बंद, सबको सूरदास का राम–राम, अब जाता हूँ। जो कुछ बना–बिगड़ा, छमा करना।..... नायकराम गंगाजल लाने दौड़े।..... सूरदास मुंह से कुछ न बोला, दोनों हाथ जोड़े, आंसू की दो बूंदें गालों पर बह आयीं, और खिलाड़ी मैदान से चला गया।..... सब–के–सब इस खिलाड़ी को एक आंख देखना चाहते थे, जिसकी हार में भी जीत का गौरव था..... वह यथार्थ में खिलाड़ी था– वह खिलाड़ी, जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाये। जीता, तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो जीतने वाले से कीना नहीं रखा, जीता तो हारने वाले पर तालियां नहीं बजायीं। जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धांधली नहीं की, कभी द्वंद्वी पर छिपकर चोट नहीं की।..... हाँ, वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था। एक क्षुद्र शक्तिहीन प्राणी था चिन्ताओं और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमें अवगुण भी थे, और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार– ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी दुर्गुण उस पर गुण के संपर्क से, नमक की खान में जाकर नमक हो जाने वाली वस्तुओं की भांति, देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे– क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सद्‌नुराग, मोह सदुत्साह के रूप में प्रकट होता था और अहंकार आत्माभिमान के वेष में! और वह गुण क्या था? न्याय–प्रेम, सत्य–भक्ति, परोपकार, दर्द या उसका जो नाम चाहे रख लीजिए।''[42]

''सूरदास' की सबसे बड़ी जीत यह थी कि शत्रुओं को भी उससे शत्रुता न थी। अगर शोक समाज में सोफिया, गांगुली, जाह्नवी, भरत सिंह, नायक राम, भैरो आदि थे, तो महेन्द्र कुमार सिंह, जॉन सेवक, जगधर, यहाँ तक कि मि. क्लार्क भी

थे। चंदन की चिता बनायी गई थी, उस पर विजय–पताका लहरा रही थी।..... यह एक वीरात्मा की वीर मृत्यु थी, यह एक खिलाड़ी की अन्तिम लीला।''[43] *''जहाँ सूरदास का झोपड़ा था, वहीं उसकी मूर्ति का स्थापन हुआ। कीर्तिमानों की कीर्ति को अमर करने के लिए मनुष्य के पास और कौन–सा साधन है? अशोक की मूर्ति भी तो उसके शिला–लेखों ही से अमर है। वाल्मीकि और व्यास, होमर और फिरदौसी, सबको तो नहीं मिलते।..... पांड़ेपुर में बड़ा समारोह था।..... रानी जाह्नवी ने करुण कंठ और सजल नेत्रों से मूर्ति को प्रतिष्ठित किया।* ***संध्या–समय प्रीति–भोज हुआ, छूत और अछूत साथ बैठकर एक ही पंक्ति में खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बड़ी विजय थी।.....*** *शुभ्र ज्योत्स्ना में सूरदास की मूर्ति एक हाथ से लाठी टेकती हुई और दूसरा हाथ किसी अदृश्य दाता के सामने फैलाये खड़ी थी– वही दुर्बल शरीर था..... बस, ऐसा मालूम होता था, मानो कोई स्वर्गलोक का भिक्षुक देवताओं से संसार के कल्याण का वरदान माँग रहा है।''*[44] राजा महेन्द्र जैसे लोग उसकी मूर्ति को भी नहीं बख्शते। ''प्रतिमा पर आघात के चिह्न शोषण के प्रतीक, कष्ट एवं मार के चिह्न अभी भी मूर्ति के पैरों और मुख को विकृत किये हुए हैं जिस तरफ जनता का ध्यान नहीं जाता। प्रेमचंद की चिन्ता है कि लड़ाई ठीक से नहीं लड़ी गयी। अतः गांधी की परम्परागत प्रतिमा से खुश नहीं हैं। प्रेमचंद जिस मूर्ति को कितने समय से दिल में संजोये थे और उसे जब स्थापित करते हैं तो वह भी सही सलामत नहीं रही, उसे खण्डित कर दिया जाता है। मूर्ति पर आघात वस्तुतः प्रेमचंद के गांधीवादी–सनातन मूल्यों पर भी आघात है। उन्हें लगता है कि नई मूर्ति गढ़ने का वक्त आ गया है। गांधीवादी तरीके से या प्रोचेन्जर्स के ढंग से स्वराज्य मिलने से रहा।''[45] इसी से पूरे उपन्यास में भ्रम टूटने, प्रायश्चित करने की अटूट ध्वनि गूंजती है। गांधीवादी 'सूरदास' का कथन है कि ''इस समय मरूंगा तो बैकुण्ठ पाऊँगा,..... कई आदमियों को जानता हूँ, जो आज से दस बरस पहले मरते तो लोग उनका जस गाते, आज उनकी निन्दा हो रही है।''[46] का गहरा अर्थ है। 1914 के प्रथम विश्व युद्ध के समय जब अंग्रेज फँसे थे, उसी समय उनके खिलाफ

'स्वराज' के लिए लड़े होते तो यह दिन न देखने पड़ते। प्रथम विश्व युद्ध के समय गांधीजी लोगों को अंग्रेजों का सहयोग करने, उनकी फौज में भर्ती होने का अह्वान कर रहे थे जिसके लिए उन्हें 'सार्जेण्ट' की उपाधि मिली थी। गांधीजी ने इस सेवा–सहयोग को लोगों से 'स्वराज के पट्टे' समझने को कहा था। मगर हुआ उल्टा गांधी एवं गांधीवाद से मोहभंग।

''रंगभूमि का सम्बन्ध ठेठ हिन्दुस्तानी जनता से है। यह सन् 1920 और 1930 के बीच का उपन्यास है जब हिन्दुस्तान में बड़े–बड़े नेताओं की तरफ से राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन न हो रहा था, जब अंग्रेज कहते थे कि देश में शान्ति है। तब भी सूरदास लड़ रहा था और मृत्यु–शय्या से पुकार कर कह रहा था– 'फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो।' यह भारत की अजेय जनता का स्वर था।''[47]

विनय

विनय बनारस के धनाढ्य राजपूत जमींदार कुंवर भरतसिंह और रानी जाह्नवी की एकमात्र संतान है। कुंवर साहब और रानी जाह्नवी की उसको एक देश–सेवक के रूप में देखने को बलवती इच्छा है। ''मैं विनय को ऐसा मनुष्य बनाना चाहती हूँ, जिस पर समाज को गर्व हो, जिसके हृदय में अनुराग हो, साहस हो, धैर्य हो, जो संकटों के सामने मुंह न मोड़े, जो सेवा के हेतु सदैव सिर को हथेली पर लिए रहे, जिसमें विलासिता का लेश भी न हो, जो धर्म पर अपने को मिटा दे। मैं उसे सपूत बेटा, निश्छल मित्र और निःस्वार्थ सेवक बनाना चाहती हूँ।''[48] सोफिया और विनय के प्रेम–सम्बन्ध के मध्य रानी जाह्नवी द्वारा ही बाधा उत्पन्न की जाती है और वे उसको सोफिया से दूर करने के लिए ही राजस्थान भेज देती हैं। विनय अत्यधिक सादगी–पूर्ण जीवन व्यतीत करता है, जिसके मूल में उसकी माता की ही शिक्षाओं और उनकी आकांक्षाओं का हाथ स्वीकार किया जाना चाहिए। वह जिस सेवा–समिति का संगठन करता है, उसके सदस्यों का जीवनध्येय

ही बड़ा सादा जीवन व्यतीत करना है। सेवा–मार्ग उनका ध्येय था। दीवान साहब कहते हैं– ''आपने इस युवावस्था में विषय–वासना को त्याग कर लोक–सेवा का व्रत धारण किया है, मेरे दिल में आपके प्रति विशेष प्रेम और सम्मान है।..... विनय– समाज की सेवा करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है और समाज से पृथक् होकर मैं अपना व्रत भंग करने में असमर्थ हूँ।''[49] मि. क्लार्क, सोफिया से कहते हैं– ''मैं उस युवक का हृदय से सम्मान करता हूँ। उसके दृढ़ संकल्प की, उसके साहस की, उसकी सत्यवादिता की दिल से प्रशंसा करता हूँ। जानता हूँ वह एक ऐश्वर्यशाली पिता का पुत्र है और राजकुमारों की भाँति आनन्द–भोग में मग्न रह सकता है; पर उसके ये ही सद्गुण हैं। जिन्होंने उसे इतना अजेय बना रखा है। एक सेना का मुकाबला करना इतना कठिन नहीं, जितना ऐसे गिने–गिनाये व्रतधारियों का, जिन्हें संसार में भय नहीं।''[50] सोफिया और विनय के बीच सात्विक प्रेम–भावना है। दोनों एक–दूसरे के सद्गुणों के प्रति आकर्षित हैं। सोफी– 'विनय मैं विपत्ति की ही भूखी हूँ। अगर तुम सुख–सम्पन्न होते, अगर तुम्हारा जीवन विलासमय होता, अगर तुम वासनाओं के दास होते तो कदाचित् मैं, तुम्हारी तरफ से मुंह फेर लेती। तुम्हारे सत्साहस और त्याग ही ने मुझे तुम्हारी तरफ खींचा है।''[51]

विनय का सोफिया–विषयक प्रेम सात्विकता से ओत–प्रोत और उदात्त है। उसके प्रेम–भाव में पाने की नहीं अपितु न्यौछावर करने की कामना की प्रधानता है। विनय के जसवन्तनगर चले जाने के पश्चात् जब उसे जेल में डाल दिया जाता है और उसको जेल से मुक्त कराने के उद्देश्य से ही सोफिया मि. क्लार्क के साथ प्रेम का स्वांग करती हुई, उदयपुर आती है। विनय की गिरफ्तारी का कारण यह बताया जाता है कि उनका डाकू वीरपाल सिंह से जान–पहचान है। विनय के आश्चर्य की उस दशा में सीमा नहीं रहती जब उसको यह बताया जाता है कि उसको उसे डाकिये की रिपोर्ट पर गिरफ्तार किया जा रहा है जिसके साथ वह जंगल से आया था और जिसके साथ वह रात को सोया था। विनय का चकित रह जाना सर्वथा स्वाभाविक था– ''मानव–चरित्र कितना दुर्बोध और जटिल है, इसका विनय को

जीवन में पहली ही बार अनुभव हुआ। इतनी श्रद्धा और भक्ति की आड़ में इतनी कुटिलता और पैशाचिकता।''[52] विनय के चरित्र में दया, प्रेम, करुणा, सत्य, सेवा, त्याग, कर्तव्यनिष्ठता इत्यादि मानवीय– मूल्य हैं। विनय, इन्द्रदत्त से कहते हैं– ''सेवक का धर्म यश और अपयश का विचार करना नहीं है, उसका धर्म सन्मार्ग पर चलना है। मैंने सेवा का व्रत धारण किया है, और ईश्वर न करे कि वह दिन देखने के लिए जीवित रहूं, जब मेरे सेवाभाव में स्वार्थ का समावेश हो।''[53] अन्ततः विनय पांड़ेपुर के संग्राम में वीरगति को प्राप्त होते हैं।

जॉन सेवक

'रंगभूमि' उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने मि. जॉन सेवक को उन उद्योगपतियों के प्रतिनिधि पात्र के रूप में चित्रित किया है जो अपने व्यवसाय के विकास के लिए साम–दाम, दण्ड–भेद की नीति को अपनाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही रहते हैं। ''जान सेवक दुहरे बदन के गोरे चट्टे आदमी थे, सिर व दाढ़ी के बाल खिचड़ी हो गये थे। पहनावा अंग्रेजी था, जो उन पर खूब खिलता था। मुखाकृति से गरूर और आत्मविश्वास झलकता था।''[54] सिगरेट का कारखाना खोलने के लिए 'सूरदास' की दस बीघा पैतृक ज़मीन को लेकर जॉन सेवक व सूरदास के बीच भीषण संघर्ष चलता है। जॉन सेवक के ताल्लुक़ात एक तरफ कुँवर भरत सिंह जैसे ताल्लुकेदारों से है तो दूसरी तरफ़ क्लार्क जैसे अंग्रेज़ हाकिमों से भी। दोनों के साथ मिलकर वह अपना काम निकालना चाहता है। कहने को कहता है– ''हमारी जाति का उद्धार कला–कौशल और उद्योग की उन्नति में है।''[55] वास्तव में वह लूट का जाल रचता है जिसमें ज़मींदार और अंग्रेज़ भी शामिल रहते हैं। वह गाँव वालों में फूट डालता है। सूरदास से वह कहता है– ''अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसको तारों का निशाना मारने वाली तोपें हैं।''[56] 'रंगभूमि' के रणस्थल का एक मात्र विजेता जॉन सेवक है– लेकिन उसके भाग्य की विडम्बना है कि वह पाठक की सहानुभूति, प्रशंसा और हृदय को नहीं जीत सका। ''भारतवर्ष का विकास हुआ है एक औपनिवेशिक–आर्थिक–शोषण के आधार पर बनी

व्यवस्था पर। भारतवर्ष भी उपनिवेश था, साम्राज्यवाद का शिकार। इसलिए यहाँ पर उत्पन्न होने वाले पूँजीवाद में विश्व–पूँजीवाद के सारे दुर्गुण मौजूद थे। इसी मरणासन्न पूँजीवाद के वर्ग–प्रतिनिधि हैं– रंगभूमि के खलनायक जॉन सेवक। इसीलिए स्वस्थ पूँजीवाद की शक्ति, स्वच्छता, हृदय की रोमांटिक निर्मलता, व्यक्ति–स्वातन्त्र्य और आजादी की अथाह भावना आदि का उनमें लवलेश भी नहीं है। इसके विपरीत वे संकीर्ण, स्वार्थी, धनलोलुप, कठोर और परतन्त्रता के पुजारी बन गये।''[57] जॉन सेवक कल्पनाशील व्यक्ति थे। वे अपने षड्यन्त्र की गणित में कभी फेल नहीं हुए, क्योंकि वे दूसरों के मन के महान ज्ञाता थे। वे जो भी कार्य करते हैं– वह स्वतः प्रेरक नहीं होता। उसके पीछे उनकी सारी बुद्धि, जीवन का पूरा स्वार्थी अनुभव काम करता। जॉन सेवक, प्रभु सेवक से कहता है– ''संसार शांति–भूमि नहीं, समरभूमि है। यहाँ वीरों और पुरुषार्थियों की विजय होती है निर्बल व कायर मारे जाते हैं।..... यह स्वजातीय उद्योग और व्यवसाय का प्रश्न है। इस विषय में समस्त भारत के रोजगारी, क्या हिन्दूस्तानी और क्या अँगरेज, मेरे सहायक होंगे; और गवर्नमेंट कोई इतनी निर्बुद्धि नहीं है कि वह व्यवसायियों की सम्मिलित ध्वनि पर कान बन्द कर ले। यह व्यापार–राज्य का युग है। योरप में बड़े–बड़े शक्तिशाली साम्राज्य पूँजीपतियों के इशारों पर बनते–बिगड़ते हैं, किसी गवर्नमेंट का साहस नहीं कि उनकी इच्छा का विरोध करें।''[58] जॉन सेवक सोफी से विनय के साथ उसके विवाह–सम्बन्ध के बारे में कहता है– ''धर्म विरुद्ध होने की मुझे जरा भी परवाह न थी। धर्म हमारी रक्षा और कल्याण के लिए है। अगर वह हमारी आत्मा को शांति और देह को सुख नहीं प्रदान कर सकता, तो मैं उसे पुराने कोट की भांति उतार फेंकना पसंद करूंगा।''[59]

गोदान

''गोदान की मूल समस्या ऋण की समस्या है। प्रेमचंद किसानों के जीवन के अलग–अलग पहलुओं पर उपन्यास लिख चुके थे– 'प्रेमाश्रम' में बेदख़ली और इज़ाफा लगान पर, 'कर्मभूमि' में बढ़ते हुए आर्थिक संकट और किसानों की